

मनुस्मृतिः रचनाकाल और प्रक्षेप

स्व. आचार्य रामदेव जी

राजर्षि मनु और उनकी मनुस्मृति

[मनुस्मृति-विषयक विभिन्न बिन्दुओं की
विभिन्न विद्वानों द्वारा तर्क-प्रमाणयुक्त समीक्षा]

लेखक एवं संकलन-सम्पादक

डॉ० सुरेन्द्रकुमार

आचार्य, एम.ए. संस्कृत-हिन्दी

(मनुस्मृति भाष्यकार एवं समीक्षक)

प्राचार्य, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गुडगांव (हरियाणा)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

ISBN 978-81-7077-125-0

प्रकाशक : विजयकुमार गोविन्दराम हासानबद्द

4408, नई सड़क, दिल्ली-110 006

दूरभाष : 23977216, 65360255

e-mail : ajayarya@vsnl.com

Website : www.vedicbooks.com

वैदिक-ज्ञान-प्रकाश का गरिमापूर्ण 84वाँ वर्ष (1925-2009)

संस्करण : 2009

मूल्य : 150.00 रुपये

मुद्रक : नवशक्ति प्रिंटर्स, दिल्ली-110 032

सम्पादकीय

‘राजर्षि मनु और उनकी मनुस्मृति’ शीर्षक यह मुक्ताहार पाठकों के हाथों में सौंपते हुए मुझे पर्याप्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। इसके तीन कारण हैं—एक, इस विषय के विशेषज्ञ अनेक वैदिक विद्वानों के लेख इसमें ऐसे संकलित हैं जैसे किसी हार में मोतियाँ पिरोई होती हैं। उन विद्वानों के मनु और मनुस्मृति-सम्बन्धी चिन्तन से पाठक लाभान्वित हो सकेंगे। दूसरा, यह पुस्तक मनु और मनुस्मृति-विषयक भ्रान्तियों को दूर करने में सहायक सिद्ध होगी तथा उन भ्रान्तियों के विस्तार को रोकेगी। तीसरा, एक ही स्थान पर, एक विषय पर, अनेक विचारकों के विचार एकत्र मिलना कठिन होता है। सबको सब पुस्तकें उपलब्ध नहीं हो पातीं, अतः अध्ययन-मनन में पाठकों को सुविधा-लाभ होगा।

सन् 1996 (विक्रमी सम्वत् 2053) और उसके कुछ पूर्व वर्षों में कुछ राजनीतिक दलों ने मनु-मनुस्मृति को अपनी स्वार्थपूर्ति का मुद्दा बनाकर ‘मनुवाद’ के नाम पर खूब विषवमन किया और भारतीय समाज में विघटन के बीज बोने शुरू कर दिये। आर्यसमाज जैसा राष्ट्रभक्त संगठन इस राष्ट्रविरोधी गतिविधि से चिन्तित हो उठा। राष्ट्रहितैषी बुद्धिजीवियों के मस्तक पर चिन्ता की रेखाएं झालकने लगीं। सब सोचते थे कि इसका निराकरण कैसे किया जाये। दुःख का विषय यह भी था कि यह सारा प्रोपगेंडा मिथ्या था और पाश्चात्य लेखकों द्वारा प्रयुक्त फूट-नीति पर टिका था। ऐसा लग रहा था—जैसे अंग्रेजों का स्वप्न स्वतन्त्र भारत में साकार होने लगा है।

किसी को भी आगे न आता देख इस समाज और राष्ट्रविरोधी निन्दनीय गतिविधि को रोकने के लिए आर्यसमाज उठ खड़ा हुआ। अपने तर्क रूपी तीर और प्रमाण रूपी तरक्स लेकर, दृढ़संकल्प के कमरबन्द से

कमर कसकर, वैचारिक युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गया। वयोवृद्ध संन्यासी स्वामी दीक्षानन्द जी सरस्वती ने सन् 1996 (विक्रमी संवत् 2053) को ‘मनुवर्ष’ घोषित कर दिया और मनुविरोधी वितण्डावाद को रोकने तथा मनु-सम्बन्धी सत्य मान्यताओं को प्रचारित-प्रसारित करने का कार्यक्रम बनाया। देश के कोने-कोने में आर्यसमाजों के माध्यम से मनु-विषयक उत्सवों के आयोजन हुए, अनेक स्थानों पर महासम्मेलन भी हुए, लेखों और ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ। यह सब देखकर मनुविरोधी ठिठकने लगे। आर्यों के तर्कों और प्रमाणों के उत्तर न सूझने पर वे लोग बगलें झाँकते रह गये। मनुविरोधी अभियान में एक ठहराव-सा आ गया और भ्रान्तियों का प्रसार धीमा पड़ गया।

उसी वर्ष में स्वामी दीक्षानन्द जी सरस्वती ने ‘राजर्षि मनु’ के नाम से आठ ट्रैक्ट प्रकाशित किये। एक ट्रैक्ट एक विद्वान के लेख पर आधारित था। लेखक सभी सुलझे हुए विद्वान् थे। विषय को प्रभावशाली शैली में प्रस्तुत करने की योग्यता उनकी लेखनी में थी। जिस लेखक का जैसा अपना विचार था उसको बिना किसी टीका-टिप्पणी के उसी रूप में प्रकाशित कर दिया। लक्ष्य यही था कि लोगों तक मनु-सम्बन्धी अच्छे विचार एक बार पहुँचें।

उसी वर्ष आर्यसमाज भुवनेश्वर (उड़ीसा) के उत्सव पर उड़िया के आर्य लेखक श्री प्रियब्रत दास जी इन्जीनियर के निमन्त्रण पर स्वामी जी का और मेरा जाना हुआ। हम दोनों एक ही कक्ष में तीन दिन रुके। ‘राजर्षि मनु’ नामक पुस्तिकाओं के सैद्धान्तिक पक्ष पर पर्याप्त चर्चा हुई। स्वामीजी ने मुझे टिप्पणी-सहित एक पुस्तकाकार में इनका सम्पादन करने को कहा। फिर वह बात विस्मृति के अध्यकार में विलीन हो गयी। कुछ वर्षों के बाद स्वामी जी महाराज भी दिवंगत हो गये।

विचित्र संयोग देखिए। आर्य साहित्य के प्रकाशक, प्रचारक और वितरक ‘गोविन्दराम हासानन्द, नयी सड़क, दिल्ली’ के मन में वही योजना वर्षों बाद फिर से अंकुरित हुई और उसके सम्पादन का दायित्व फिर से मुझ पर आ गया। तब तो यह पूरा नहीं हो सका किन्तु अब इसको पूरा कर अपने पाँच लेखों के साथ इसे पाठकों के हाथों में सौंप रहा हूँ। पाठक

इसका अध्ययन कर अधिकाधिक लोगों को पढ़ने को प्रेरित करें जिससे भारत के ही नहीं, अपितु मानव जाति के गौरव रूप महापुरुष, आदिराजा, विश्व के आदि संविधान निर्माता, आदि धर्मशास्त्रकार और मानवों के आदि-प्रमुख-पुरुष महर्षि मनु के विषय में फैलाई जा रही भ्रान्तियों पर विराम लग सके और मनु की प्रतिष्ठा की रक्षा हो सके।

इस राष्ट्रहितकारी पुण्य कार्य का प्रकाशन-दायित्व अपने हाथों में लेने के लिए 'गोविन्दराम हासानन्द' प्रकाशन के स्वामी श्री अजयकुमार जी शतशः धन्यवाद के पात्र हैं।

गुडगांव

—डॉ० सुरेन्द्रकुमार

अनुक्रम

1. आदिराजा और आदि विधि-प्रदाता मनु स्वायम्भुव (जीवनवृत्त, व्यक्तित्व और कृतित्व) (डॉ. सुरेन्द्रकुमार)	11
2. मनुस्मृति की मौलिक मान्यताएँ (डॉ. सुरेन्द्रकुमार)	35
3. मनुस्मृति में प्रक्षेप : प्रमाण और दुष्परिणाम (डॉ. सुरेन्द्रकुमार)	54
4. मनुस्मृति : एक अध्ययन (स्व. पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय)	67
5. मनुस्मृति : रचनाकाल और प्रक्षेप (स्व. आचार्य रामदेव)	108
6. मनु की देन (स्व. पं. भगवद्दत्त)	138
7. राजर्षि मनु और मनुस्मृति (स्व. डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल)	154
8. राजर्षि मनु और वेद (डॉ. भवानीलाल भारतीय)	169
9. मनु की वेदों के प्रति आस्था (डॉ. कृष्णलाल)	186
10. मनु की दृष्टि में ब्राह्मण और शूद्र (डॉ. कृष्णवल्लभ पालीवाल)	210
11. चिन्तन की एक भिन्न दिशा : मनु की वर्ण-व्यवस्था में शूद्र तथा अन्य वर्ण (डॉ. उर्मिला रुस्तगी)	238
12. वर्णव्यवस्था में आर्य-शूद्र वैमनस्य की अवधारणा पाश्चात्य दुरभिसन्धि की देन (डॉ. सुरेन्द्र कुमार)	268
13. किस मनु का विरोध किया है डॉ० अम्बेडकर ने ? (डॉ. सुरेन्द्र कुमार)	276

मनुस्मृति : रचनाकाल और प्रक्षेप

स्व. आचार्य रामदेव
(इतिहासकार)

मनुस्मृति का निर्माण-काल—‘श्लोकबद्ध मनुस्मृति जिसमें आजकल प्रायः 2684 श्लोक¹ मिलते हैं, हमें किन-किन ऐतिहासिक बातों की शिक्षा देती है’ इस विषय पर विचार करने के पूर्व आवश्यक है कि हम यह निर्णय कर लें कि यह मनुस्मृति कब बनी।

श्लोकबद्ध मनुस्मृति कब बनी—योरोपीय इतिहासज्ञ ऑनरेबल एलफिंस्टन साहब अपने ग्रन्थ ‘हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, (पञ्चमावृत्ति) के पृष्ठ 11-12 में लिखते हैं—

“The first complete picture of the state of society is afforded by the code of laws which bears the name of Manu and which was probably drawn up in the 9th century before Christ.”

अर्थात्—‘सामाजिक दशा का प्रथम पूर्णचित्र उस धर्मशास्त्र से ज्ञात होता है जिस पर मनु का नाम है और जो कदाचित् ईसा के जन्म से पूर्व नवीं शताब्दी में निर्मित हुआ था (अर्थात् अब से प्रायः अट्टाइस सौ वर्ष पूर्व)।’

इसी विषय में इतिहासज्ञ डॉक्टर हंटर साहब अपने ग्रन्थ ‘दि इण्डियन एम्पायर’ (द्वितीयावृत्ति) के फर्स्ट वॉल्यूम (प्रथम खण्ड) के पृष्ठ 113 में लिखते हैं—

1. देखिए सन् 1887 ई. की मुम्बई ‘निर्णयसागर’ प्रेस की छपी हुई मनुस्मृति जिस पर कुल्लूक भट्ट की टीका है।

“It is a compilation of the customary law current probably about the 5th century BC……the present code must have been compiled between 100 and 500 A.D.”

अर्थात्—“व्यावहारिक नियमों का यह (मनुस्मृति) एक संग्रह है जो (नियम) कि इसा के जन्म से पूर्व प्रायः पाँचवीं शताब्दी में प्रचलित थे……परन्तु वर्तमान (श्लोकबद्ध) धर्मशास्त्र तो 100 (एक सौ) से 500 (पाँच सौ) इसवी के बीच ही संग्रहीत हुआ होगा।”

इसी विषय में सर डब्ल्यू० जॉस साहब, ‘हफटंस इंस्टीट्यूट ऑफ हिन्दू लॉ’ की भूमिका पृष्ठ 10 में लिखते हैं—

“The laws of Manu very probably were considerably older than those of Solon or even of Lycurgus, although the promulgation of them, before they were reduced to writing, might have been coeval with the first monarchies established in Egypt and India.”

अर्थात्—“मनु के राजनियम, अधिक सम्भव है कि सोलन तथा लाइकरगस¹ के राजनियमों से भी बहुत पुराने हों, यद्यपि लेखबद्ध होने के पूर्व मनु के राजनियम (उक्त काल से भी अधिक प्राचीन समय से अर्थात्) उस समय में भी प्रचारित हों जब कि मिश्र² तथा भारत में प्रथम-प्रथम राज्य स्थापित हुए थे।”

इसी विषय में प्रोफेसर जी० बुहलर साहब अपनी पुस्तक ‘लॉज़ ऑफ मनु’ की भूमिका पृष्ठ 114 तथा 117 में लिखते हैं—

“As the Yavanas are named together with the Kambojas of Kabulis exactly in the same manner as in

1. सोलन और लाइकरगस यूनान के दो राज-व्यवस्थापक थे जिनमें से सोलन इसा के जन्म से प्रायः 600 वर्ष पूर्व विद्यमान था और लाइकरगस इसा के जन्म से प्रायः 900 वर्ष पूर्व था।
2. ‘थियाजोनी ऑफ दि हिन्दूज़’ नामक ग्रन्थ के पृष्ठ 45 में लिखा है कि—“The oldest king found on the Egyptian tables of Matho (viz. the head of the Tinite Thebaine dynasty) who reigned 5867 years B.C. and 2000 year

the edicts of Asoka, it is highly probable that Greek subjects of Alexander's successors, and especially the Bactrian Greeks are meant....I think it so far to rely more on the mention of the Yavanas, Kambojas, and Sakas and to fix the remoter limit of the work about the beginning of the 2nd century A.D. or somewhat earlier. This estimate of the age of the Bhrgu Samhita, according to which it certainly existed in the 2nd century A.D. and seems to have been composed between that date and the 2nd century B.C., agrees very closely with the views of Professor Cowell and Mr. Talboys Wheeler."

अर्थात् “क्योंकि यवनों का नाम काम्बोज वा काबुलियों¹ के साथ ठीक उसी प्रकार आया है जिस प्रकार कि (ये नाम) अशोक के शिलालेख में आये हैं, अतः अधिक सम्भव है कि इससे (यवन शब्द से) अलक्षेन्द्र के उत्तराधिकारियों की...ग्रीक-प्रजा और विशेषकर बैक्ट्रियन ग्रीक लक्षित हों...मैं समझता हूँ कि यह अधिकतर (रक्षित) ठीक होगा कि यवन, काम्बोज और शक (शब्दों) के वर्णन पर अधिकतर निर्भर किया जाये और इस ग्रन्थ का पिछला समय प्रायः द्वितीय ईसवी शताब्दी का आरम्भ अथवा कुछ पूर्व निश्चित किया जाये। भृगुसंहिता (श्लोकबद्ध मनुस्मृति) के समय

before Saufi the founder of the Gizeh Pyramid” अर्थात् मेथो की मिश्रियों की सूची से ज्ञात होता है कि उनका सबसे प्राचीन राजा अर्थात् तिनित थीबेन वंश का आदिपुरुष ईसा के जन्म से 5867 वर्ष पूर्व राज करता था अर्थात् ‘गिज़ेह’ की समाधि के संस्थापक ‘सौफ़ी’ के समय से 2000 वर्ष पूर्व।

1. नोट—प्रोफेसर बुहलर साहब का यह कथन कि काम्बोज काबुलियों को कहते थे किसी प्रमाण से पोषित दीख नहीं पड़ता। मिस्टर जे० एफ० व्हाइट साहब के ‘उत्तरीय भारत के प्राचीन इतिहास’ विषयक लेख जो रॉयल एशियाटिक सोसायटी के 1888 तथा 1889 के जर्नल में छपे हैं और जिन्हें बड़ी प्रशंसा के साथ इतिहासज्ञ मिस्टर रागोज़िन ने अपनी पुस्तक ‘वैदिक इण्डिया’ पृष्ठ 288 में उद्धृत किया है, उनसे तो पता लगता है कि ‘काम्बोज’ ब्रह्मपुत्र तथा इरावती नदियों के किनारे असम देश के निकट

की यह (आनुमानिक) गणना (जिसके अनुसार) द्वितीय ईसवी शताब्दी में यह अवश्य ही विद्यमान थी और जिसके अनुसार यह उक्त समय तथा ईसा के जन्म से पूर्व द्वितीय शताब्दी के बीच निर्मित हुई ज्ञात होती है, प्रोफेसर काउएल तथा मिस्टर टालबॉयज़ व्हीलर के मन्तव्यों के साथ बहुत अधिक मिलती है।”

श्लोकबद्ध मनुस्मृति के निर्माणकाल के विषय में हमने जो उक्त चार योरोपीय इतिहासज्ञों की सम्मति उद्धृत की है, उससे ज्ञात होगा कि ये एक-दूसरे का खण्डन कर रहे हैं। डॉक्टर हंटर इसे 100 से 500 ईसवी के बीच बनी हुई बतलाते हैं, जबकि सर डब्ल्यू० जॉस साहब इसे ईसा के जन्म से कम से कम 900 वर्ष पूर्व का बना हुआ मानते हैं। इसके नियमों का प्रचार ईसा के जन्म से प्रायः 5867 वर्ष पूर्व भी मानते हैं।

ऑनरेबल एलफिंस्टन साहब ने मनुस्मृति के निर्माणकाल का जो अनुमान प्रस्तुत किया है, उसके लिए उन्होंने कोई पुष्ट प्रमाण नहीं दिया। ज्ञात होता है कि उन्होंने वेदों का संग्रहकाल जो ईसा के जन्म से प्रायः 1400 वर्ष पूर्व माना है, इसी कारण उन्हें मनुस्मृति का काल उक्त 1400 वर्ष के पीछे मानना पड़ा है। क्योंकि उक्त कालों का अनुमान उक्त इतिहासज्ञ ने किसी पुष्ट प्रमाण पर निर्भर नहीं दिखलाया, इस कारण उनकी सम्मति उनकी निज सम्मतिमात्र समझी जायेगी। वह अन्यों के लिए भी ऐतिहासिक घटना की तरह माननीय नहीं हो सकती।

डॉक्टर हंटर साहब ने मनुस्मृति के निर्माण का काल जो 100 (एक सौ) तथा 500 (पाँच सौ) ईसवी के बीच बतलाया है, उन्होंने भी अपने कथनों की पुष्टि में सिवा इसके और कुछ नहीं लिखा कि इस विषय में अमुक योरोपीय

रहते थे, यथा—“Their (Kolarian's) languages are allied to those used on the Brahmaputra and the Irawaty by a Kambojans and the Assamese अर्थात् कोलेरियों की भाषा उस भाषा से मिलती है जिसे ब्रह्मपुत्र तथा इरावती के किनारे बसनेवाले काम्बोज और असमी बोलते हैं (ध्यान रहे कि यूरोपीय इतिहासज्ञ कोलेरियों को भारत में आर्यों से भी पूर्व आया हुआ मानते हैं, परन्तु हैं और जहाँ तक हमें ज्ञात है कि उनके इस कथन की पुष्टि आर्यवर्त के किसी भी प्राचीन ग्रन्थ में नहीं होती)।

विद्वान् की यह सम्मति है और अमुक विद्वान् की यह, और जिन-जिन विद्वानों की सम्मति आपने लिखी है, वे भी मनुसमृति को भिन्न-भिन्न समयों में बना हुआ बतलाते हैं, अतः डॉक्टर हंटर साहब का भी मनुसमृति के निर्माणकाल-विषयक लेख मान्य दृष्टि से नहीं देखा जा सकता।

हाँ, सर डब्ल्यू० जोंस साहब मनुसमृति का प्राचीनता के कुछ पोषक ज्ञात होते हैं और वह अनुमान करते हैं कि कोई भी राज्यशासन राजनियमों के बिना नहीं चल सकता और मनुसमृति से पुराना आर्यों का कोई राजनियम दिखलाई नहीं देता, और क्योंकि आर्यों ने अति प्राचीनकाल में राज्यस्थापन किया था, अतः सम्भव है कि मनु के नियम ईसा के जन्म से प्रायः 5867 वर्ष पूर्व प्रचरित हों, अस्तु। यद्यपि सर डब्ल्यू० जोंस की बातें आर्यकणों को अन्यों के कथनों की अपेक्षा मधुर ज्ञात होंगी, तथापि प्रमाणों के सन्मुख प्रस्तुत नहीं रहने से इतिहास का प्रेमी ऐसे कथनों पर भी श्रद्धा नहीं कर सकता (सम्भव है कि सर डब्ल्यू० जोंस ने किसी अन्य पुस्तक में इस विषय में कुछ विशेष लिखा हो, परन्तु हमें कोई वैसी पुस्तक नहीं मिली इस कारण अपनी यह सम्मति लिखनी पड़ी)।

अब शेष रह गयी प्रोफेसर जी० बुहलर साहब की सम्मति की समालोचना। योरोपीय इतिहासज्ञ इन्हें अच्छा संस्कृतज्ञ समझते हैं और इन्होंने मनुसमृति पर अंग्रेजी टीका भी लिखी है और मनुसमृति के निर्माणकाल-विषय में कतिपय प्रमाण भी प्रस्तुत किये हैं, अतः इनके कथनों पर विशेष सावधानता से विचार करना चाहिए। प्रोफेसर जी० बुहलर साहब जो मनुसमृति का निर्माणकाल ‘ईसा के जन्म से दो शताब्दी पूर्व’ और ‘ईसा के पश्चात् सन् ईसवी दूसरी शताब्दी’ के बीच (200 बी०सी० से 200 ए०डी० के बीच) अनुमान करते हैं और उसमें वे जो हेतु देते हैं, उसका सारांश यह है कि मनुसमृति अध्याय दश के श्लोक 44 “पौण्ड्रकाश्चौड्रद्विडः काम्बोजा यवनाः शकाः। पारदापह्लवाश्वीनाः किराता दरदाः खशाः” में जो ‘काम्बोजा यवनाः शकाः’ पाठ आया है वह सिद्ध करता है कि जिस समय भारतवासियों का सम्बन्ध अलक्षेन्द्र (अलकज्ञपंडर वा सिकन्दर) के उत्तराधिकारियों की यूनानी (यवन) प्रजा और विशेषकर बैक्ट्रिया राज्य की यूनानी प्रजा के साथ हुआ, तब यह मनुसमृति बनी।

अलक्षेन्द्र के सेनापति सैल्यूकस का राज्य बैकिट्र्या में भी था जहाँ कुछ यूनानी बसते थे। सैल्यूकस ने जब से महाराज चन्द्रगुप्त से सन्धि की, तब से बैकिट्र्या पर चन्द्रगुप्त, पुनः उनके पुत्र बिन्दुसार, और पुनः बिन्दुसार के पुत्र अशोक का प्रभाव क्रमशः बढ़ता गया और बैकिट्र्या के यूनानियों (यवनों) का बारम्बार गमनागमन भारत में होने लगा और क्योंकि महाराज अशोक का राज्य ईसा के जन्म से प्रायः 260 वर्ष पूर्व आरम्भ हो गया था, इसी कारण ज्ञात होता है कि प्रोफेसर जी० बुहलर साहब यवनों के साथ भारतवासियों का विशेष सम्बन्ध ईसा के जन्म से प्रायः दो सौ वर्ष पूर्व से मानते हैं और इसी आधार पर 'यवन' शब्द को मनुस्मृति में देखकर अनुमान करते हैं कि इस सम्बन्ध के बाद मनुस्मृति बनी होगी जिसका 'ईसा के जन्म से दो सौ वर्ष पूर्व' से लेकर 'ईसा के बाद सन् ईसवी दो सौ' तक के बीच होगा।

मनुस्मृति में आये हुए 'यवन' शब्द का अर्थ विशेषकर बैकिट्र्या की यूनानी प्रजा है। इसकी पुष्टि में महाराज अशोक के पञ्चम शिलालेख को प्रोफेसर बुहलर साहब प्रस्तुत करते और लिखते हैं कि क्योंकि मनुस्मृति में यवनों का नाम कम्बोज वा काबुलियों के साथ-साथ ठीक उसी प्रकार आया है जिस प्रकार कि (ये नाम) अशोक के शिलालेख में आये हैं, अतः अधिक सम्भव है कि इससे (यवन शब्द से) अलक्षेन्द्र के उत्तराधिकारियों की ग्रीक (यूनानी) प्रजा और विशेषकर बैकिट्र्या ग्रीक लक्षित हों।¹

1. नोट—यवन, काम्बोज और शक शब्द विदेशी भाषा के नहीं, प्रत्युत शब्द संस्कृत के हैं। देखिए वाचस्पत्य कोष पृष्ठ 4775। वहाँ 'यवन' शब्द की व्युत्पत्ति 'यु' धातु से बतलाई है और यह भी लिखा है कि यह शब्द 'वेग' और 'गोधूम' अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। हाँ, इसका अर्थ देश-विशेष, वा वहाँ के निवासी, वा वहाँ का राजा भी लिखा है। अतः मनु के अध्याय दश, श्लोक 43 तथा 44 का अभिग्राय यही ज्ञात होता है कि यवनादि कई जातियों की उत्पत्ति क्षत्रियों से ही हुई थी, परन्तु ज्ञानी ब्राह्मणों का सत्संग छूटने से ये वृषलत्व वा भ्रष्टा को प्राप्त हो गये।

'काम्बोज' शब्द भी शुद्ध संस्कृत का है। वाचस्पत्य कोष पृष्ठ 1906 में काम्बोज का अर्थ लिखा है "कम्बोजोऽभिजनो यस्य" अर्थात् कम्बोज है देश जिनका वे काम्बोज कहलाते हैं और 'सोमवल्के', 'पुण्यागवृक्षे', 'श्वेतखदिरे', 'गुज्जायां' इन अर्थों में भी काम्बोज शब्द का प्रयुक्त होना लिखा है।

प्रोफेसर बुहलर साहब का केवल इतना कथन ठीक है कि यवन शब्द ग्रीक वा यूनानी प्रजा का बोधक है (परन्तु स्मरण रहे कि यवन शब्द का अपभ्रंश यूनानी शब्द है, अर्थात् यवन शब्द से यूनानी शब्द की उत्पत्ति हुई है, न कि यूनानी शब्द से यवन शब्द की। अर्थात् जो लोग पहले यवन कहलाते थे, इन्हीं में से कुछ लोग पीछे से जिस देश में जा बसे होंगे उसका नाम यवनीय Ionia पड़ा होगा और पुनः वही जाति यवनानी वा यूनानी कहलाने लगी होगी और देश का नाम यूनान पड़ गया होगा)। परन्तु उनका यह अनुमान ठीक नहीं कि भारतवासी और यवनों का विशेष सम्बन्ध ईसा के जन्म से प्रायः दो सौ व तीन सौ वर्ष पूर्व से ही आरम्भ हुआ।

ग्रन्थ 'महाभारत' में जहाँ सप्राट् युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ का वर्णन है तथा जहाँ कौरव-पाण्डवों के युद्ध का वर्णन है, उन प्रकरणों को देखिए तो ज्ञात होगा कि कितने विदेशी महाराज उक्त समयों पर भारत में आये थे। वहाँ स्पष्ट लिखा है कि विडालाक्ष नामक यवन राजा पधारे थे। क्या वह घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं कि सप्राट् युधिष्ठिर निमन्त्रण वा सन्देशा भेजें और यवनराज उनके यज्ञ वा युद्ध में सम्मिलित हों?

इन प्रकरणों के अतिरिक्त 'यवन' जाति का नाम महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय 33, श्लोक 21 में भी आया है और साथ ही 'काम्बोज' और 'शक' जातियों के भी नाम आये हैं, यथा—

शका यवनकाम्बोजास्तास्ताः क्षत्रियजातयः ।

वृषलत्वं परिगता ब्राह्मणानामदर्शनात् ॥

पुनः महाभारत शान्तिपर्व अध्याय 65, श्लोक 13 में भी 'यवन' जाति का नाम आया है और साथ ही 'शक' जाति का नाम भी। पुनः श्लोक 14 में काम्बोज जाति का नाम भी आया है, यथा—

यवनाः किराता गान्धाराश्वीनाः शवरबर्बर्गाः ।

शकास्तुषाराः कङ्गाश्व पह्वाश्वान्धमद्रकाः ॥

'शक' शब्द भी शुद्ध संस्कृत का है। वाचस्पत्य कोष पृष्ठ 5072 में इस शब्द का अर्थ लिखा है “‘जातिभेदे स च ब्रात्यक्षत्रियः’ एक प्रकार की जाति के लोग जो कि ब्रात्यक्षत्रिय थे।

पौण्ड्राः पुलिन्दा रमठाः काम्बोजाश्चैव सर्वशः ।

ब्रह्मक्षत्रप्रसूताश्च वैश्याः शूद्राश्च मानवाः ॥

पुनः महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय 35 श्लोक 18 में भी यवन शब्द का पाठ है, यथा—

किराता यवनाश्चैव तास्ता क्षत्रियजातयः ।

वृषलत्वमनुप्राप्ता ब्राह्मणानाममर्षणात् ॥

महाभारत के उक्त श्लोकों में यवन, काम्बोज और शक जातियों के नाम देखकर भी यदि कोई कहे कि मनुस्मृति की तरह महाभारत भी ईसा के जन्म से प्रायः दो सौ वर्ष पूर्व बना, तो उसके कथनों को कोई भी इतिहास का प्रेमी कैसे स्वीकार कर सकता है?

योरोपीय इतिहासज्ञ ऑनरेबल एलफिंस्टन साहब महाभारत के युद्ध के विषय में अपने ग्रन्थ ‘हिस्ट्री ऑफ इण्डिया’ पञ्चमावृति के पृष्ठ 227 में लिखते हैं—

“The date of the war has already been discussed. It was probably in the fourteenth century before Christ.”

अर्थात्—“उस (महाभारत) युद्ध की तिथि पर विचार हो चुका। सम्भव है कि यह ईसा के जन्म से पूर्व चौदहवीं शताब्दी में हुआ हो।”

एवं अन्यान्य योरोपीय इतिहासज्ञ भी महाभारत-युद्ध को ईसा के जन्म से 200 वर्ष पूर्व से भी विशेष पूर्व का मानते हैं। अतः सप्राट् युधिष्ठिर के समकालीन यवनराजा विडालाक्ष का सम्बन्ध एवं यवनों का घनिष्ठ सम्बन्ध भारत से उन योरोपीय इतिहासज्ञों को भी ईसा के जन्म से 200 वर्ष पूर्व से भी बहुत पूर्व का मानना चाहिए था।

इटली के प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ गोरेसियो (Gorresio) रामायण के अपने अनुवाद की भूमिका में लिखते हैं—

The name of Yavanas may have been anciently used by the Indians to denote the nations situated to the west of India; more recently, that is after the time of Alexander, it was applied principally to the Greeks.

“ऐसा हो सकता है कि भारतवासियों ने ‘यवन’ नाम का प्रयोग प्राचीन समय में उन सब मनुष्यजातियों के लिए किया हो जो भारत से पश्चिम की ओर बसते हैं और पिछले दिनों अर्थात् अलक्षेन्द्र के समय के पीछे इस शब्द का विशेष प्रयोग यूनानियों के लिए करते हों।”

काम्बोज और शक जातियों का भी सम्बन्ध भारत से अति प्राचीन काल से चला आता है।

मनुसमृति के श्लोक महाभारत में— श्लोकबद्ध मनुसमृति को जो लोग बहुत प्राचीन मानते हैं, उनकी ओर से निम्नलिखित तर्क किया जा सकता है—

मनुसमृति में कहीं भी महाभारत वा महर्षि व्यास का नाम नहीं आया है और महाभारत में राजर्षि मनु का नाम बड़ी प्रतिष्ठा के साथ बारम्बार आया है, यथा—

1. मनुनाऽभिहितं शास्त्रं यच्चापि कुरुनन्दन!

(महाभारत, अनुशासनपर्व, अध्याय 47, श्लोक 35)

2. तैरैवमुक्तोभगवान् मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत्।

(महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय 36, श्लोक 5)

3. एष दायविधिः पार्थ! पूर्वमुक्तः स्वयम्भुवा।

(महाभारत, अनुशासनपर्व, अध्याय 47, श्लोक 58)

4. सर्वकर्मस्वहिंसां हि धर्मात्मा मनुरब्रवीत्।

(महाभारत, शान्तिपर्व, मोक्षधर्म) इत्यादि-इत्यादि।

अतः सिद्ध होता है कि महाभारत के पूर्व मनुसमृति विद्यमान थी यतः महाभारतरचयिता ने स्वयं राजर्षि मनु के कथनों को प्रमाणरूप से महाभारत में लिखा है।

परन्तु प्रतिवादी तर्क कर सकता है कि महाभारत के उक्त श्लोकों से यह तो निस्सन्देह सिद्ध होता है कि राजर्षि मनु महाभारत से पहले विद्यमान थे, परन्तु यह सिद्ध नहीं होता कि श्लोकबद्ध मनुसमृति भी महाभारत के पूर्व विद्यमान थी; सम्भव है कि आपस्तम्बादि सूत्रग्रन्थों में जिस मानवधर्मसूत्र का नाम आया है उस धर्मसूत्र के रचयिता मनु का नाम महाभारत में आया हो।

इसका उत्तर है मनुसमृति अध्याय 9 का निम्नलिखित 321वाँ श्लोक—

अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् ।

तेषां सर्वत्रां तेजः स्वासु योनिषु शास्यति ॥

महाभारत शान्तिपर्व अध्याय 56 में ज्यों का त्यों आता है जहाँ कि इस श्लोक की संख्या 24 है और इस चौबीसवें श्लोक के पूर्व जो तेर्वें श्लोक है उसमें लिखा है “मनुना चैव राजेंद्र! गीतौ श्लोकौ महात्मना” अर्थात् “हे राजेंद्र! मनु नाम महात्मा ने इन श्लोकों को कहा है।” जब कि मनुस्मृति के श्लोक को महाभारत में उद्धृत करता हुआ पुरुष लिखता है कि यह श्लोक मनु का है। तब क्यों न माना जाये कि श्लोकबद्ध मनुस्मृति महाभारत से पहले विद्यमान थी?

मनुस्मृति अध्याय 9 के उक्त 321वें श्लोक के अतिरिक्त मनुस्मृति के निम्नलिखित श्लोक भी ज्यों के त्यों महाभारत में आते हैं—

1. यस्य त्रैवार्षिकं भक्तं पर्याप्तं भृत्यवृत्तये ।

अधिकं वापि विद्येत स सोमं पातुर्मर्हति ॥ (मनु० 11/17)

द्रष्टव्य—यह श्लोक ज्यों का त्यों महाभारत शान्तिपर्व, अध्याय 165 में आता है जहाँ इसकी संख्या 5 है (पाँचवाँ श्लोक) है।

2. योऽनाहिताग्निः शतगुरुयज्वा च सहस्रगुः ।

तयोरपि कुटुम्बाभ्यामाहरेदविचारयन् ॥ (मनु० 11/12)

द्रष्टव्य—यह श्लोक भी ज्यों का त्यों महाभारत शान्तिपर्व, अध्याय 165 में आता है जहाँ इस श्लोक की संख्या 9 है।

3. संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ।

याजनाऽध्यापनद्यौनान् तु यानासनाशनात् ॥ (मनु० 11/180)

द्रष्टव्य—यह श्लोक भी ज्यों का त्यों महाभारत शान्तिपर्व, अध्याय 165 में आता है जहाँ इस श्लोक की संख्या 37 है।

4. नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम् ।

कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशं भृतको यथा ॥ (मनु० 6/45)

द्रष्टव्य—यह श्लोक ज्यों का त्यों महाभारत शान्तिपर्व, अध्याय 245 में आया है जहाँ यह 15वाँ श्लोक है।

5. ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति ।

प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान् प्रतिपद्यते ॥ (मनु० 2 / 120)

द्रष्टव्य—यह श्लोक ज्यों का त्यों महाभारत अनुशासनपर्व अध्याय 104 में आया है जहाँ यह 64वाँ श्लोक है। मुम्बईवाले महाशय गणपतिकृष्णा जी के छपाये महाभारत में तो ‘प्रत्युत्थान’ ही पाठ है, परन्तु कलकत्ता के महाशय प्रतापचन्द्र राय जी के छपाये महाभारत में ‘अभ्युत्थान’ पाठ है।

मनुसमृति के उक्त श्लोक जो ज्यों के त्यों महाभारत में आये हैं, इनके अतिरिक्त मनुसमृति के निम्नलिखित श्लोक किञ्चित् परिवर्तनों के साथ महाभारत में आये हैं—

1. यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ।

यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति ॥

(मनु० 2 / 157)

यथा दारुमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ।

ब्राह्मणश्चानन्धीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति ॥

(महाभारत, शान्तिपर्व, 36 / 47)

द्रष्टव्य—जो अर्थ मनुसमृति के श्लोक 57 का है, वही अर्थ महाभारत में आये हुए श्लोक 47 का है।

2. सर्वरत्नानि राजा तु यथार्हं प्रतिपादयेत् ।

ब्राह्मणान् वेदविदुषो यज्ञार्थं चैव दक्षिणाम् ॥

(मनु० 11 / 4)

सर्वरत्नानि राजा हि यथार्हं प्रतिपादयेत् ।

ब्राह्मणा एव वेदाश्च यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः ॥

(महाभारत, शान्तिपर्व, 165 / 4)

3. यो वैश्यः स्याद् बहुपशुर्हीनक्रतुरसोमपः ।

कुटुम्बात्तस्य तद् द्रव्यमाहरेयज्ञसिद्धये ॥

(मनु० 11 / 12)

यो वैश्यः स्याद् बहुपशुर्हीनक्रतुरसोमपः ।
कुटुम्बात्तस्य तद्वितं यज्ञार्थं पार्थिवो हरेत् ॥

(महाभारत, शान्तिपर्व, 165/ 7)

4. नरके हि पतन्त्येते जुह्वन्तः स च यस्य तत् ।
तस्माद्वैतानकुशलो होता स्याद् वेदपारगः ॥

(मनु० 11/ 37)

नरके निपतन्त्येते जुह्वनाः स च यस्य तत् ।
तस्माद्वैतानकुशलो होता स्याद् वेदपारगः ॥

(महाभारत, शान्तिपर्व, 165/ 22)

5. पुमांसं दाहयेत् पापं शयने तप्त आयसे ।
अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्र दहोत पापकृत् ॥

(मनु० 8/ 372)

पुमांसमुन्नयेत्प्राज्ञः शयने तप्त आयसे ।
अभ्याददीत दासूणि तत्र दहोत पापकृत् ॥

(महाभारत, शान्तिपर्व, 165/ 63)

6. पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माताग्निर्दक्षिणः स्मृतः ।
गुरुराहवनीयस्तु साऽग्नित्रेता गरीयसी ॥

(मनु० 2/ 231)

पिता वै गार्हपत्योऽग्निहर्माताग्निर्दक्षिणः स्मृतः ।
गुरुराहवनीयोऽग्निः साऽग्नित्रेता गरीयसी ॥

(महाभारत, शान्तिपर्व, 108/ 7)

7. पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥

(मनु० 9/ 3)

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।
पुत्राश्च स्थविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥

(महाभारत, अनुशासनपर्व, 46/ 14)

**8. पितृभिर्भ्रातृभिश्चैता: पतिभिर्देवरैस्तथा ।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्प्याणमीप्सुभिः ॥**

(मनु० 3/ 55)

**पितृभिर्भ्रातृभिश्चापि श्वशुरैरथदेवरैः ।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्प्याणमीप्सुभिः ॥**

(महाभारत, अनुशासनपर्व, 46/ 3)

अनुमान है कि महाभारत के भिन्न-भिन्न स्थलों में कम-से-कम पचास श्लोक ऐसे होंगे जो मनुस्मृति से ज्यों-के-त्यों वा किञ्चित् परिवर्तनों के साथ उद्धृत किये गये हों।¹

इतने प्रमाणों के प्रस्तुत रहते हुए कौन कह सकता है कि श्लोकबद्ध मनुस्मृति महाभारत से पूर्व विद्यमान न थी ?

मनुस्मृति के श्लोक वाल्मीकिरामायण में—केवल महाभारत ही क्यों, वाल्मीकिरामायण के किञ्चिन्धाकाण्ड सर्ग 18 को देखिए, वहाँ भी मनु के श्लोकों का वर्णन आता है। जहाँ श्री रामचन्द्रजी अत्याचारी बाली को घायल कर उसके आक्षेपों के उत्तर में अन्यान्य कथनों के साथ-साथ यह भी कहते हैं कि तूने अपने छोटे भाई सुग्रीव की स्त्री को बलात् हरण कर और उसे अपनी स्त्री बना अनुजभार्याभिमर्श का दोषी बन चुका, जिसके लिए (धर्मशास्त्र में) वध दण्ड की आज्ञा है। इस पृथिवी के स्वामी महाराज भरत हैं (अतः तू भी उनकी प्रजा है); मैं उनकी आज्ञापालन करता हुआ विचरता हूँ फिर मैं तुझे यथोचित दण्ड कैसे न देता ? जैसा कि—

**श्रूयते मनुना गीतौ श्लोकौ चारित्रिवत्सलौ ।
गृहीतौ धर्मकुशलैस्तथा तच्चरितं मया ॥ 30 ॥
निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ॥ 31 ॥**

1. मनुस्मृति में पाठभेद होता आया है। मनुस्मृति की टीका करनेवाले मेधातिथि के समय में 500 के लगभग पाठभेद मिलते थे। दूसरे टीकाकार कुल्लूकभट्ट के समय प्रायः 650 पाठभेद थे और तीसरे टीकाकार राघवानन्द के समय भी 300 के लगभग पाठभेद मिलते थे और चौथे टीकाकार नन्दन के समय भी 100 के लगभग पाठभेद थे। अतः सम्भव है कि महाभारत में मनु ने कोई-कोई श्लोक जो किञ्चित् परिवर्तनों के साथ आते हैं, परन्तु जिस परिवर्तन वा पाठभेद से अर्थ में कुछ भेद नहीं होता, वे श्लोक महाभारत में जिस समय आए हों उस समय मनुस्मृति में भी उसी प्रकार के हों।

शासनाद्वापि मोक्षाद्वा स्तेनः पापात्प्रमुच्यते ।

राजा त्वशासन् पापस्य तदवाज्ञोति किल्बिषम् ॥ 32 ॥

(वाल्मीकिरामायण, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग 18, श्लोक 30, 31, 32)

मनु के कहे हुए इन दो श्लोकों से ज्ञात होता है (सुना जाता है) जो श्लोक कि चरित्रप्रतिपादन में तत्पर हैं तथा जिन्हें धार्मिक पुरुषों ने धारण किया है और जिसके अनुसार ही वह कर्म (तुम्हें दण्ड देने का) मैंने किया है कि “पाप किये हुए मनुष्य जब राजा से उचित दण्ड पा लेते हैं, तब वे भी निर्मल होकर सुकृत सन्तों की तरह स्वर्ग वा सुखविशेष को प्राप्त होते हैं। दण्ड पाने से वा (राजा के द्वारा) छोड़ दिये जाने से चोर अपने पाप से छूट जाता है, परन्तु यदि राजा पाप के लिए चोर को दण्ड नहीं देता तो वह चोर के (पाप के फल) दुःख को प्राप्त होता है।” (तात्पर्य यह है कि यदि मैं तुझे दण्ड न देता तो न तू पापमुक्त होता और न मैं पापी को न दण्ड देने के अपराध से बचता ।)

रामायण किष्किन्धाकाण्ड सर्ग 18 के उक्त श्लोक 30 में मनु का नाम आया है और श्लोक 31 तथा 32 मनु के बतलाये गये हैं। अब परीक्षा करनी चाहिए कि रामायण का उक्त लेख कहाँ तक ठीक है? श्लोक 31 तथा 32 मनुस्मृति में कहीं मिलते हैं अथवा नहीं? उक्त दोनों ही श्लोक किञ्चित् पाठभेद (परन्तु जिससे अर्थ में कुछ भी भेद नहीं आया) मनुस्मृति के अध्याय 8 में मिलते हैं जिनकी संख्या (कुल्लूकभट्ट की टीकावाली मनुस्मृति में) 318 तथा 319 है। यथा—

1. राजभिर्धृतदण्डाश्च कृत्वा पापानि मानवाः ।

निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ॥

(रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, 18/ 31)

राजनिर्धृतदण्डाश्च कृत्वा पापानि मानवाः ।

निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ॥

(मनुस्मृति, 8/ 318)

2. शासनाद्वापि मोक्षाद्वा स्तेनः पापात् प्रमुच्यते ।

राजा त्वशासन् पापस्य तदवाज्ञोति किल्बिषम् ॥

(रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, 18/ 32)

शासनाद्वा विमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद् विमुच्यते ।
अशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्याज्ञोति किल्बिषम् ॥

(मनुस्मृति 8 / 316)

अतः यह सिद्ध हुआ कि श्लोकबद्ध मनुस्मृति वाल्मीकिरामायण के पूर्व विद्यमान थी। यदि कोई कहे कि यह क्यों न माना जाये कि वाल्मीकिरामायण से ही उक्त दोनों श्लोक मनुस्मृति में आये हैं, तो इसका उत्तर यह है कि मनुस्मृति में कहीं भी श्रीरामचन्द्र की वा महर्षि वाल्मीकि वा रामायण की वार्ता नहीं आई है और रामायण में स्पष्टतः मनु के श्लोकों (मनुना गीतौ श्लोकौ) की प्रशंसा विद्यमान है। अतः सिद्ध होता है कि मनुस्मृति रामायण के काल से भी पहले की है।

उक्त प्रकार से हमने संक्षेपतः यह दिखला दिया कि योरोपीय विद्वान् मनुस्मृति को थोड़े दिनों की बनी हुई सिद्ध करने के लिए किस तरह तर्क करते हैं तथा मनुस्मृति के प्राचीन होने के पक्ष में कौन-कौन से प्रमाण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

मनुस्मृति में प्रक्षेप—अब हम यह दिखलाना चाहते हैं कि इस विषय में हमारी सम्मति क्या है। यदि कोई वर्तमान मनुस्मृति से आद्योपान्त पढ़ जाये तो उसे ज्ञात होगा कि इस मनुस्मृति में परस्पर-विरुद्ध श्लोक अनेक भेरे पड़े हैं, यथा—

मांस-मदिरा विषयक—इस विषय में मनु का स्पष्ट और दृढ़ मत है कि ये महापाप हैं—

नाऽकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित् ।

न च प्राणिवधः स्वर्गस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥ (मनु० 5 / 48)

अर्थात् “प्राणियों की हिंसा के बिना मांस नहीं उत्पन्न होता और प्राणियों के वध से सुख नहीं मिलता, अतः मांस ग्रहण-योग्य नहीं है।”

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने ।

प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥ (मनु० 5 / 86)

“मांस खाने, मदिरा पीने तथा मैथुन में दोष नहीं है, क्योंकि इनमें लोगों की प्रवृत्ति है, परन्तु यदि इन्हें छोड़ दें तो महापुण्य होता है।”

ऊपर के श्लोक में दिखलाया है कि मदिरापान में भी दोष नहीं है,

परन्तु मनुस्मृति का निम्नलिखित श्लोक इसे महापाप बतलाता और मद्यप के लिए कठिन-कठोर प्रायश्चित्त नियत करता है—

सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णा सुरां पिबेत्।

तया स काये निर्दग्धे मुच्यते किल्बिषात्ततः ॥ (मनु० 11 / 90)

“जिस द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य ने मोहवश मदिरा पी ली हो, उसे चाहिए कि आग के समान गर्म की हुई मदिरा को पीवे ताकि उससे उसका शरीर जले और वह मद्यपान के पाप से छूटे।”

प्रतिष्ठा और अप्रतिष्ठा-विषयक—इस विषय में मनुस्मृति कहती है—

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ।

यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम ब्रिभ्रतिः ॥ (मनु० 2 / 157)

“जैसे कि काष्ठ का हाथी और चमड़े का मृग होता है, वैसे ही बिना पढ़ा ब्राह्मण कुलोत्पन्न है। ये तीनों नाममात्र को धारण करते हैं।”

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।

स जीवनेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥ (मनु० 2 / 168)

“जो द्विजकुलोत्पन्न वेदों को बिना पढ़े अन्यकार्यों में श्रम करता है, वह जीता हुआ ही पुत्रादि सहित शूद्रत्व को प्राप्त हो जाता है।”

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।

क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद् वैश्यात्तथैव च ॥ (मनु० 10 / 165)

(अर्थात् जैसे ‘अत्युत्तम गुण-कर्म-स्वभाव धारण करने से) शूद्रकुलोत्पन्न पुरुष भी ब्राह्मण हो जाता है, (वैसे ही निकृष्ट गुण-कर्म-स्वभाव धारण करने से) ब्राह्मण-कुलोत्पन्न भी शूद्रता को प्राप्त हो जाता है, (एवं ब्राह्मण वा शूद्र के गुण-कर्म-स्वभाव वाले होने से) क्षत्रिय और वैश्यकुलोत्पन्न, ब्राह्मण वा शूद्र हो जाते हैं।” (जबकि एक शूद्रकुलोत्पन्न, ब्राह्मण तक बन जाता था तो दूसरा शूद्रकुलोत्पन्न क्षत्रिय वा वैश्य भी बन जाता ही होगा, एवं यदि एक वैश्यकुलोत्पन्न ब्राह्मण बन सकता था तो दूसरा वैश्यकुलोत्पन्न ब्राह्मणपद से नीचे क्षात्रपद को प्राप्त कर सकता ही होगा, एवं कोई क्षात्रकुलोत्पन्न जबकि शूद्र तक बन जाता था तो अन्य

क्षात्रकुलोत्पन्न के लिए शूद्रपद से एक पद ऊपर वैश्य बनना कठिन न होगा।)

उक्त तीनों श्लोकों के विपरीत मनुस्मृति के निम्नलिखित दो श्लोक हैं—

अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणो दैवतं महत्।

प्रणीतश्चाऽप्रणीतश्च यथाऽग्निर्देवतं महत्॥ (मनु० ९/३१७)

एवं यद्याप्यनिष्टेषु वर्तन्ते सर्वकर्मसु।

सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्याः परमं दैवतं हि तत्॥ (मनु० ९/३१९)

“चाहे अविद्वान् हो वा विद्वान्, ब्राह्मण महती देवता है जिस प्रकार कि अग्नि प्रणीत हो वा अप्रणीत वह महती देवता है।”

“यद्यपि ब्राह्मण इस प्रकार सब नीच कर्मों में लगे रहते हैं, तो भी वे सब प्रकार से पूजनीय ही हैं, क्योंकि उनमें बड़ा भारी देवत्व है।”

एवं परस्परविरुद्ध श्लोक कई उद्घृत किये जा सकते हैं। प्रश्न हो सकता है कि जिस मनुस्मृति में उत्तमोत्तम ज्ञान की बातें भरी पड़ी हैं, जिसमें तर्क और प्रमाणों की आवश्यकता बतलाई गयी है, उसके बनानेवाले क्या ऐसे मूर्ख थे कि उन्होंने अपनी पुस्तक के एक स्थल में जिस बात को कहा उसी को दूसरे स्थल में खण्डन कर दिया? ऐसा काम तो पागल का होता है, जिसका मस्तिष्क ठीक नहीं, अथवा उस पुरुष का जिसकी विद्या और स्मरणशक्ति बहुत ही अल्प होती है और जो अपनी उत्तरदायिता को कुछ भी नहीं समझता, अस्तु। अब विचारना यह चाहिए कि मनुस्मृति में जो परस्परविरुद्ध कई श्लोक मिलते हैं, उनमें से किस प्रकार के श्लोक असल ग्रन्थ के हैं और किस प्रकार के श्लोक अन्यों के प्रक्षेप किये हुए हैं।

असल श्लोकों की जाँच की कसौटी—मनुस्मृति २/८ में लिखा हुआ है—

सर्वं तु समवेक्ष्येदं निखिलं ज्ञानचक्षुषा।

श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान् स्वधर्मे निविशेत वै॥

अर्थात्—“विद्वान् को चाहिए कि इस सबको (इस धर्मशास्त्र को) ज्ञान के नेत्रों से तथा वेद के प्रमाण से जाँचे और अपने धर्म व कर्तव्य में संलग्न हो जाये।”

इस प्रमाण से स्पष्ट ज्ञात होता है कि मनुस्मृति के वास्तविक श्लोकों में जो कुछ लिखा गया है वह वेदानुकूल एवं ज्ञान से परिमार्जित लिखा गया है। उक्त श्लोक कहता है कि जिसकी इच्छा हो वह जाँच ले कि यह ग्रन्थ वेदानुकूल एवं ज्ञानमय है वा नहीं।

पुनः मनुस्मृति 12/105 में लिखा है—

प्रत्यक्षं चाऽनुमानं च शास्त्रं च विविधागमम्।

त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिमभीप्सता ॥

अर्थात्—“जो कोई भी धर्म (वा धर्मशास्त्र) की यथार्थता जानना चाहे, उसे चाहिए कि प्रत्यक्षप्रमाण, अनुमानप्रमाण तथा विविध प्रकार के आगम-शास्त्र (शब्दप्रमाण) इन तीनों को भली-भाँति जान ले।”

इस श्लोक से तात्पर्य यह निकलता है कि इस ग्रन्थ (धर्मशास्त्र) में प्रत्यक्ष, अनुमान व शब्दप्रमाण के विरुद्ध कुछ भी नहीं लिखा गया है।

आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राऽविरोधिना ।

यस्तर्केणाऽनुसंधन्ते स धर्मं वेदं नेतरः ॥

अर्थात्—“जो कोई धर्मग्रन्थों तथा धर्मोपदेशों को वेदशास्त्र से अविरुद्ध तर्कों के द्वारा (अर्थात् कुतर्कों द्वारा नहीं) विचारता है, वही धर्म का जाननेवाला पुरुष होता है, अन्य नहीं।”

उक्त श्लोक मानो लोगों को स्पष्ट बतला रहा है कि इस धर्मशास्त्र को भी तर्क की कसौटी पर चढ़ाओ और देखो कि विचार के पश्चात् यह कैसा ठहरता है।

अतः सिद्ध यही होता है कि मनुस्मृति के वास्तविक श्लोकों में जो कुछ लिखा गया है वह तर्क से जाँचकर, प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्दप्रमाणों की तुलाओं पर तोलकर लिखा गया है और इसी कारण लोग बारम्बार समझते आये हैं कि मनुस्मृति वेदविरुद्ध नहीं है।

अतः इस मनुस्मृति में जितनी बातें तर्कविरुद्ध वा प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द-प्रमाणों के विरुद्ध हैं (अर्थात् वेदानुकूल नहीं है) वे सब की सब असल ग्रन्थ की नहीं प्रत्युत अन्यान्य अल्पज्ञों की हैं। बस, इसी कसौटी पर मनुस्मृति के श्लोकों को चढ़ाइए और जो ठीक ठहरें उन्हें आर्ष और जो बेठीक हों उन्हें अनार्ष समझिये।

परन्तु मनुस्मृति के सब श्लोकों की जाँच वह पुरुष कर सकता है जो मनुस्मृति पर भाष्य लिखे। यह काम हमारा नहीं, अतः हम अपने प्रकरण की ओर जाते हैं।

पुराकालीन ऐतिहासिक घटनाओं के निरूपण में भ्रम का कारण—यदि हम भी मनुस्मृति पर सम्मति प्रकाशित करनेवाले डॉक्टर बुहलर आदि कतिपय योरोपीय विद्वानों की भाँति तर्क करें तो हमें कहना पड़ेगा कि यह मनुस्मृति तब बनी जबकि ब्राह्मण लोग एक प्रकार के दुश्चारों में फँसे हुए थे, क्योंकि मनुस्मृति 9/311 ॥ में लिखा है कि—

एवं यद्यप्यनिष्ठेषु वर्तन्ते सर्वकर्मसु ।

सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्या परमं दैवतं हि तत् ॥

अर्थात्—यद्यपि ब्राह्मण इस प्रकार सब नीचकर्मों में लगे रहते हैं, तो भी वे सब प्रकार से पूजनीय ही हैं क्योंकि उनमें बड़ा भारी देवत्व है। परन्तु जब कोई हमारे सन्मुख मनुस्मृति के निम्नलिखित श्लोक 2/28—

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः ।

महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥

जिसका अर्थ है “सकल विद्या पढ़ने-पढ़ाने, (ब्रह्मचर्य, सत्यभाषणादि) नियम पालने, होम करने (अर्थात् अग्निहोत्र करने वा सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग तथा सत्यविद्याओं के दान देने), (वेदस्थ कर्मोपासना ज्ञान) इन तीन प्रकार की विद्याओं के ग्रहण, इज्या अर्थात् पक्षेष्ट्यादि करने, सुसन्तानोत्पत्ति करने, (ब्रह्म, देव, पितृ, वैश्वदेव तथा अतिथि नाम) पञ्चमहायज्ञों और (अग्निष्टोमादि तथा शिल्पविद्या-विज्ञानादि) यज्ञों के सेवन से इस शरीर को ब्राह्मी अर्थात् (वेद और परमेश्वर की भक्ति का आधाररूप) ब्राह्मण का शरीर किया जाता है।”

कोई प्रश्न करेगा और हमसे पूछेगा कि मनुस्मृति के अनुसार तो कोई पुरुष ब्राह्मण बन ही नहीं सकता जब तक कि उक्त प्रकार से तप न कर ले, आप कैसे कहते हैं कि मनुस्मृति उस समय बनी जब कि ब्राह्मण लोग सब कुकर्मों में लिप्त थे? तो सिवाय मौनसाधन करने के हमसे कुछ उत्तर नहीं दिया जा सकेगा, और जबकि प्रश्नकर्ता यह कहने लगेगा कि मनुस्मृति 2/28 में क्योंकि यह लिखा है कि बड़े तप से मनुष्य ब्राह्मण बनता है, अतः

मनुस्मृति उस समय बनी जबकि बड़े तपस्वी ही सर्वोपरि पूज्य माने जाते थे, तब भी हम उनके कथनों का खण्डन नहीं कर सकेंगे।

तात्पर्य यह है कि कतिपय योरोपीय इतिहासज्ञों तथा उनके कतिपय भारतीय शिष्यों की यह शैली है कि वे जब संस्कृत-ग्रन्थों में किन्हीं एक वा दो आधुनिक बातों को भी पा लेते हैं तो प्रायः उसी आधार पर उस ग्रन्थ का निर्माणकाल निश्चित करने लगते हैं। ग्रन्थ का काल निश्चित करने के समय जिस प्रकार वे आधुनिक बातों की ओर पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं उसी प्रकार उन्हें प्राचीन बातों की ओर भी पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए। यदि वे आधुनिक बातों के साथ-साथ प्राचीन बातों का कुछ विवेचन भी करते हैं तो उनका प्राचीनकाल-विषयक अनुमान उनके आधुनिक काल से अधिक दूर जाने नहीं पाता। कारण इसका यह है कि अनेक योरोपीय इतिहासज्ञ (जिनका नाम हम इस अध्याय के आरम्भ में ले चुके हैं वे भी) बाइबल-प्रतिपादित सृष्टि-समय पर विश्वास करनेवाले हैं जो कि ईसाइयों के मतानुसार ईसा के जन्म से केवल कतिपय सहस्र वर्ष पूर्व था। यदि किसी आर्षग्रन्थ की कोई बात ईसाइयों के अनुमित सृष्टि-काल से पूर्व की कही जाती है तो बाइबल के विश्वासी इतिहासज्ञ उसे बाइबल के विरुद्ध समझते हुए असम्भव मानने लगते हैं। यहाँ कारण है कि योरोपीय इतिहासज्ञ आर्ष ग्रन्थों के निर्माणकाल के निरूपण में अभी तक कृतकार्य नहीं हुए। मन्वतरों और चतुर्युगियों तथा ब्राह्म-दिन की बातें, जिन्हें संकल्प द्वारा प्रत्येक भारतीय कर्मकाण्डी कण्ठस्थ रखता है, उन्हें महान् असम्भव प्रतीत होती है। परन्तु हर्ष की बात है कि भूर्भविद्या के आविष्कार सृष्टि की प्राचीनता का धीरे-धीरे पोषण कर रहे हैं और अनेक योरोपीय विद्वान् उस पर अब श्रद्धा करने लगे हैं, अस्तु।

गत शताब्दी के संस्कृत-विद्या के सबसे बड़े विद्वान् स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने तब तक आर्ष और अनार्ष ग्रन्थों का लक्षण कर यह नहीं बतलाया था कि अनेक आर्षग्रन्थों में भी बहुत-सी अनुचित बातें वाममार्गियों के समय से मिलती हुई चली आती है, तब तक लोगों को संस्कृत के सत्यासत्य ग्रन्थों की ठीक कसौटी प्राप्त नहीं हुई थी। आर्षग्रन्थों में स्वार्थपरता, मद्य-मांस-सेवनादि कुत्सित कर्मों के विधायक जितने वचन हैं, वे सब के

सब वाममार्गियों के मिलाये हुए हैं, क्योंकि ऐसे कुत्सित वाक्य उन्हीं आर्षग्रंथों की महोत्तम शिक्षाओं से विरुद्ध दिखाई देते हैं। एवं मनुस्मृति 5/56 ॥—

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने ।

प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥

को देखकर यह निश्चित नहीं करना चाहिए कि मनुस्मृति उस समय बनी जब कि वाममार्गियों की शिक्षा फैल चुकी थी। परन्तु इतिहासज्ञ को कोई इस परिणाम के निकालने से नहीं रोक सकता कि मनुस्मृति उस समय भी विद्यमान थी जबकि वाममार्ग का प्रचार हो रहा था, अस्तु ।

मनुस्मृति की उत्पत्ति किससे ?—(ब्रह्मा, विराट्, मनु, मरीचि, भृगु, स्वायम्भुव मनु)¹ : प्राचीन संस्कृतग्रन्थों को अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि वर्तमान सृष्टि के आरम्भकाल में ब्रह्मा नामक एक महर्षि हुए थे, उनके पुत्र का नाम विराट् था और विराट् के पुत्र मनु हुए थे। मनु के समय में कुछ राजनीतिक चर्चा चली थी। मनु के पुत्र मरीचि, भृगवादि दश हुए जिनमें से मरीचि को कुछ राजप्रबन्ध सौंपा गया था। परन्तु जब इसके वंशज ‘स्वायम्भुव मनु’ राज करने लगे, तब राजप्रबन्ध की ओर लोगों का ध्यान पूर्वपेक्षा अधिकतर आकर्षित हुआ। क्योंकि कोई भी राजप्रबन्ध मौखिक वा लिखित राजव्यवस्था के बिना नहीं हो सकता, अतः अनुमान किया जाता है कि जब से राजनीतिक चर्चा आरम्भ हुई तभी से राजव्यवस्था भी बननी आरम्भ हुई। छान्दोग्य ब्राह्मण में जो यह लिखा है कि

मनुर्वै यत्किञ्चिदवदत् तद्भेषजं भेषजतायाः ।

“जो कुछ मनु ने कहा है कि ओषधियों की भी ओषधि है वह अधिक सम्भव है विराट् के पुत्र मनु के विषय में ही हो, क्योंकि केवल ‘मनु’ नाम से विशेष ज्ञानी सबसे प्रथम वही प्रख्यात हुए थे। आपस्तम्बादि धर्मसूत्रों में मानवधर्मसूत्र के वचन उद्भूत हैं। इससे सिद्ध होता है कि मनु के

1. लेखक ने मनु और स्वायम्भुव मनु, दो पृथक् व्यक्ति माने हैं। एक-आध उल्लेखों को छोड़कर समस्त प्राचीन ऐतिहासिक परम्परा दोनों को एक ही व्यक्ति मानती है। स्वायम्भू अर्थात् ब्रह्मा, उसका पुत्र या पौत्र होने से प्रथम मनु को ही ‘स्वायम्भुव’ वंशज नाम दिया जाता है। स्वायम्भुव आदि चौदह मनु हुए हैं जिनके नाम पर चौदह ‘मन्वन्तर’ प्रचलित हैं। स्वायम्भुव ही प्रथम राजा था।—सम्पादक

नाम से कोई धर्मसूत्र भी प्रवृत्त था। परन्तु हमारे पास कोई ऐसा प्रमाण इस समय नहीं है जिससे हम सिद्ध कर सकें कि मानवधर्मसूत्र ही महर्षि मनु का अपना कथन है। यदि मानवधर्मसूत्र कहीं मिलता तो इस विषय की मीमांसा हो जाती, परन्तु शोक कि वह अमूल्य रत्न भी लुट गया और इस समय उसका पता कहीं नहीं चलता। हमारा अनुमान है कि जिस धर्मशास्त्र को मनु ने बनाया होगा, उसके 'आधार पर महाराज स्वायम्भुव मनु' के समय राजप्रबन्ध की विशेष वृद्धि हो जाने के कारण अवश्य ही कुछ नये नियम बने होंगे। एवं आर्यों का राज्य ज्यों-ज्यों विस्तृत होता गया होगा और ज्यों-ज्यों उनके समुख अनेक नूतन प्रश्न उपस्थित होते गये होंगे, त्यों-त्यों आर्य लोगों ने मानवधर्मशास्त्र के आधार पर उन प्रश्नों की मीमांसा की होगी और अधिकाधिक नूतन नियम भी बनाये होंगे। वर्तमान मनुस्मृति के देखने से ज्ञात होता है कि महर्षि भृगु तथा स्वायम्भुव मनु का नाम मानवधर्मशास्त्र के सम्बन्ध में बारम्बार आता है, जिसका कारण यही है कि महर्षि भृगु मानवधर्मशास्त्र के प्रथम प्रचारक तथा स्वायम्भुव मनु मानवधर्मशास्त्र के नियमों को भली-भाँति कार्य-परिणत करनेवाले प्रथम बड़े राजा हुए हैं। सम्भव है कि मानवधर्मशास्त्र के सम्बन्ध में इन लोगों ने इतना ऋम किया हो कि उक्त शास्त्र के साथ-साथ इन लोगों का नाम सम्बन्धित रखना इनसे पीछे की प्रजा ने आवश्यक समझ लिया हो।

(1) एक अनुमान—किसी-किसी का एक अनुमान तो यह है कि मानवधर्मशास्त्र के निर्माण के एक दीर्घकाल के पश्चात् जब कि किसी पुरुष ने मानवधर्मशास्त्र को श्लोकबद्ध मनुस्मृति के आकार में परिणत किया, तब उसने ही महर्षि भृगु तथा महाराज स्वायम्भुव मनु के मानवधर्मशास्त्र-सम्बन्धी कथनों को भी साथ ही साथ रख दिया जिस कारण मनुस्मृति में कहीं तो मनु के नाम से लिखा है कि—

यः कश्चित् कस्यचिद्बद्धमो मनुना परिकीर्तिः ।

स सर्वोभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः ॥ (मनु० 217)

अर्थात् “जो कुछ जिस किसी के लिए धर्म मनु ने कहा है वह सर्व वेद में (मूलरूप से) वर्तमान है क्योंकि वेद सर्वज्ञानमय है।” कहीं भृगु के नाम से लिखा है कि—

स तानुवाच धर्मात्मा महर्षीन् मानवो भृगुः ।

अस्य सर्वस्य शृणुत कर्मयोगस्य निर्णयम् ॥ (मनु० 12/2)

अर्थात् “उस धर्मात्मा मनु के पुत्र भृगु ने महर्षियों से कहा कि इन सब कर्मयोग के निर्णय को सुनिये” और कहीं स्वायम्भुव मनु के नाम से लिखा है कि—

अलावुं दारुपात्रं च मृण्मयं वैदलं तथा ।

एतानि यतिपात्राणि मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥ (मनु० 6/54)

अर्थात् “स्वायम्भुव मनु ने कहा है कि यतियों के भिक्षापात्र तूंबी, लकड़ी, मट्टी तथा बाँस के होते हैं।”

एवं इस मनुस्मृति में महर्षि मनु तथा उसके धर्मशास्त्र के आधार पर कहे हुए महर्षि भृगु तथा महाराज स्वायम्भुव मनु के कथन भी मिश्रित हैं। परन्तु इस अनुमान पर कोई भी पुरुष तब कुछ श्रद्धा कर सकता है जबकि मनुस्मृति में मनु वा भृगु वा स्वायम्भुव मनु के नाम से आये हुए कई श्लोक जो भ्रष्ट हैं, प्रक्षिप्त मान लिये जायें।

(2) द्वितीय अनुमान—दूसरों का अनुमान यह है कि जिन-जिन श्लोकों के साथ मनु वा भृगु या स्वायम्भुव मनु लिखा है, वे सब के सब प्रक्षिप्त हैं। जब मानवधर्मशास्त्र श्लोकबद्ध बन चुका तो लोगों ने पीछे से ‘मनु’ वा ‘भृगु’ वा ‘स्वायम्भुव मनु’ के नाम से जिस-जिस विषयों को अपने मन के अनुकूल चाहा, मिश्रित कर दिया, क्योंकि उन्होंने यह समझा होगा कि जिन श्लोकों के साथ मनु वा भृगु वा स्वायम्भुव मनु का नाम होगा वे तो अवश्य ही माननीय समझे जायेंगे। अतः मनु वा भृगु वा स्वायम्भुव मनु के नाम से आये श्लोक तथा वे सब श्लोक जो मनुस्मृति में ही प्रतिपादित सर्वहितसाधक सिद्धान्तों के प्रतिकूल तथा वेदाशयविरुद्ध हैं, मनुस्मृति में से निकाल दिये जायें, तो शेष मनु के शुद्ध उपदेश समझे जायेंगे अस्तु।

हमारी सम्मति—वर्तमान मनुस्मृति के निर्माणकाल के विषय में ध्यातव्य है कि यह एक समय में नहीं बनी। प्रथम-प्रथम मानवधर्मशास्त्र, श्लोकबद्ध शुद्ध मनुस्मृति के रूप में कब परिणत हुआ, यह अब ठीक-ठीक निश्चित नहीं हो सकता। मनुस्मृति के सैकड़ों ऐसे श्लोक हैं जो

उपनिषद्-वाक्यों की भाँति विशद और उच्चभावों के वर्णन करनेवाले हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित दो श्लोकों पर ही विचार कीजिए—

1. प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि ।

रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम्॥ (मनु० 12 / 122)

अर्थात्—“जो सबको शिक्षा देनेहारा सूक्ष्म से सूक्ष्म स्वप्रकाशस्वरूप समाधिस्थ बुद्धि से जानने योग्य है, उसको परम पुरुष जानना चाहिए।”

(यह श्लोक ‘अणोरणीयान्…’, ‘यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्ण…’, ‘दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या…’ आदि उपनिषद् के श्लोकों से कितना मिलता है!)

2. एतमेके वदन्त्यग्निं मनुपम्ये प्रजापतिम् ।

इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्॥ (मनु० 12 / 123)

अर्थात्—“इसको कोई तो (स्वप्रकाशस्वरूप होने से) अग्नि, कोई (विज्ञानस्वरूप होने से) मनु, कोई (सबका पालन करने और परमैश्वर्यवान् होने से) इन्द्र, कोई (सबका जीवनमूल होने से) प्राण, और कोई इसे (निरन्तर व्यापक होने से) ब्रह्म कहते हैं।”

(यह श्लोक यजुर्वेद के 32वें अध्याय के प्रथम मन्त्र “तदेवाऽग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदुच्न्द्रमाः। तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः” तथा ऋग्वेद मण्डल 1, सूक्त 164 के 46वें मन्त्र ‘इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्गुप्ता बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः’ के साथ कितना मिलता है!)

क्या कभी सम्भव था कि ईश्वर तथा वेद के नाम से स्वार्थी पुरुषों के द्वारा अनेक अनर्थ जब कि बुद्धदेव के समय (ईसा के जन्म से प्रायः साढ़े पाँच सौ वर्ष पूर्व) प्रवृत्त हो रहे थे तथा बुद्धदेव के समय से शताब्दियों पूर्व जबकि पशुहिंसामय यज्ञ बारम्बार हुआ करते थे ऐसे ज्ञानमय श्लोकों की रचना की ओर रुचि हुई हो ?

यदि कोई ऐसा कहे भी कि उत्तम वा निष्कृष्ट पुस्तक सभी समयों में बन सकते हैं, तो भी मनुस्मृति में जगह-जगह जो उपनिषदों की-सी ज्ञानमय लहरें चल रही हैं, वे हमें बाध्य करती हैं कि हम उन्हें उस प्राचीन समय की बतायें जब कि भारत में ईर्ष्या-द्वेष-रहित उपनिषदों में वर्णित शुद्ध

सात्विकभाव का प्रवाह बह रहा था। परन्तु हमारा यह कथन हमारे हृदय का भावमात्र है; अन्यों को भी इस भाव के धारण करने के लिए हम बाधित नहीं कर सकते।

इस तृतीय भाग के आरम्भ में बहुत से श्लोक मनुस्मृति के, जो महाभारत में तथा रामायण में उद्घृत दिखाये गये हैं, उनके विषय में जब तक कोई यह न सिद्ध कर दे कि वे श्लोक महाभारत तथा रामायण से मनुस्मृति में गये, तब तक यही मानना पड़ेगा कि श्लोकबद्ध मनुस्मृति महाभारत वा वाल्मीकिरामायण की रचना के पूर्व भी विद्यमान थी।

इस मनुस्मृति में केवल महर्षि मनु के समय की वार्ता हो अथवा महाराज स्वायम्भुव मनु के समय तक की वार्ता हो—ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि मनुस्मृति में आर्यावर्त की जो सीमा लिखी है—

आसमुद्रात् वै पूर्वादासमुद्रात् पश्चिमात् ।

तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः ॥ (मनु० 2/22)

वह सिद्ध कर रही है कि जब पूर्व-समुद्र से पश्चिम-समुद्र तक (अर्थात् वर्तमान अरबसागर से बंगाल की खाड़ी तक) के बीच के देश में तथा विन्ध्यगिरि के आस-पास के भी बहुत-से भागों में जबकि आर्य बस चुके थे, तब यह श्लोक रचा जा सका, क्योंकि स्वायम्भुव मनु के बहुत दिन पीछे महाराज इक्ष्वाकु आर्यावर्त को बसाने लगे थे अतः आर्यावर्त की सीमासूचक उक्त श्लोक निस्सन्देह महाराज इक्ष्वाकु के समय वा उनके समय से भी पीछे बन सका होगा। इसके अतिरिक्त मनुस्मृति के श्लोक—

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः ।

वृष्टलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च ॥ (मनु० 10/43)

पौण्ड्रकाश्चौद्ग्रविडाः काम्बोजा यवनाः शकाः ।

पारदाः पल्लवश्चीनाः किराता दरदाः खशा ॥ (मनु० 10/44)

जिनका अर्थ है कि “क्रियाओं के लोप होने से और ब्राह्मणों के न मिलने से ये क्षत्रिय जातियाँ धीरे-धीरे वृष्टलत्व को प्राप्त हो गई अर्थात् पतित हो गई, (उन क्षत्रिय जातियों के नाम है)—“पौण्ड्रक, औद्ग, द्रविड, काम्बोज, यवन, शक, पारद, पल्लव, चीन, किरात, दरद, और खश” सिद्ध कर रहे हैं कि आर्यावर्त के धर्मपरायण ब्राह्मणों का प्रचार जब किसी कारण

रुक गया और उक्त चीनादि जातियाँ पूर्ण धर्मशिक्षा प्राप्त न कर सकीं तब पतित हो गईं। अर्थात् उक्त दोनों श्लोक उस सयम के पश्चात् बने जब कि आर्यावर्त भली-भाँति बस चुका और इसके ब्राह्मण कुछ काल तक भली-भाँति धर्मप्रचार कर किसी कारण कुछ काल के लिए इधर-उधर जाने से रुक गये। क्योंकि उक्त दशाएँ महर्षि मनु वा उनके पुत्र महर्षि भृगु वा मरीचि वा उनके वंशज स्वायम्भुव मनु के समयों की नहीं हो सकतीं, अतः निश्चय है कि उक्त श्लोक जो आशय प्रकट करते हैं वे उक्त महानुभावों के समयों के बहुत पीछे के हैं। इसी प्रकार के अन्यान्य भी कई श्लोक ऐसे हैं जिनके भाव तो अति उत्तम हैं, परन्तु वे मनु वा भृगु वा स्वायम्भुव मनु के समयों के नहीं हो सकते। वाममार्ग की शिक्षावाले श्लोक यथा—

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने ।

प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥ (मनु० ५।५६)

तथा मनुस्मृति तृतीयाध्याय के वे सब श्लोक जो भिन्न-भिन्न पशुओं के मांसों से पितरों के लिए पिण्डप्रदान की शिक्षा देते हैं, तब वे सब श्लोक जो स्वार्थपरता तथा अन्यान्य क्षुद्राशयों की शिक्षा देते हैं, जो मनुस्मृति के गम्भीर आशययुक्त सर्वहितकारी सिद्धान्तों के सर्वथा प्रतिकूल हैं, निस्सन्देह बहुत पीछे से मनुस्मृति के भाग बने हैं।

इन सब कथनों को श्रवण कर कदाचित् कोई ऐसा प्रश्न करे कि यह क्यों न माना जाये कि मनुस्मृति उक्त सब अवस्थाओं के व्यतीत हो जाने पर, पीछे से नवीनकाल में बनी? तो उसका उत्तर यह है कि यदि नवीनकाल में ही मनुस्मृति बनी होती तो इसके प्रमाण महाभारत तथा वाल्मीकिरामायण में नहीं मिलते। परन्तु यह कथन भी ठीक नहीं है कि सारी की सारी वर्तमान मनुस्मृति प्राचीनकाल में विद्यमान थी, क्योंकि इसमें जो क्षेपकरूप आधुनिक वार्ताएँ हैं वे प्राचीनकाल की नहीं मानी जा सकतीं।

मनुस्मृति से निकले हुए तथा उसमें प्रक्षेप किये हुए श्लोकों की संख्या—इसके अतिरिक्त निरुक्त अध्याय 3, पा० 1 में लिखा है—

अविशेषेण पुत्राणां दायो भवति धर्मतः ।

मिथुनानां विसर्गादौ मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥

परन्तु यह श्लोक वा इस आशय का कोई अन्य श्लोक अब मनुस्मृति में नहीं मिलता। इसी प्रकार शङ्करदिग्विजय, मिताक्षरा, निर्णयसिन्धु, स्मृतिरत्नाकर, पराशरमाधव, स्मृतिचन्द्रिका, विवादभङ्गार्णव, प्रायश्चित्तमयूख आदि अनेक ग्रन्थों में मनु के नाम से पचासों वचन उद्भूत हैं, परन्तु उनका पता वर्तमान मनुस्मृति में नहीं लगता। इससे सिद्ध होता है कि मनुस्मृति में पहले बहुत-से श्लोक ऐसे भी थे जिन्हें वा जिनके आशयों को अन्यान्य ग्रन्थकारों ने उद्भूत किया था, परन्तु किसी कारण वे श्लोक निकल गये। ऐसा भी सम्भव है कि क्षेपक भरनेवालों ने ही मनुस्मृति से श्लोकों को निकाला हो और उनके स्थानों में अपने श्लोक रख दिये हों जिससे गणना में भेद न होने पाये। परन्तु पाप एक न एक दिन प्रकट होता ही है। तदनुसार उनकी अनुचित कार्यवाही दिनोंदिन अधिक-अधिक प्रकट होती जाती है। मनु के वचन जो अन्यान्य ग्रन्थों में मिलते हैं परन्तु अब वे मनुस्मृति में नहीं हैं, उनकी संख्या प्रायः 300 तक अद्यावधि जानी गयी है, तथा जो श्लोक मनुस्मृति में क्षेपकरूप से वाममार्ग के प्रचारकाल के कुछ समय पूर्व वा पीछे से मिलाये गये हैं, उनकी संख्या प्रायः 400 तक है।

हमारे ऊपर के लेख का अवलोकन कर तथा अधीर होकर कोई ऐसा भी कह सकता है कि जब कि मनुस्मृति इस प्रकार जोड़-तोड़ और काट-छाँट के भीतर पड़ चुकी है तो उस पर श्रद्धा करना भी व्यर्थ ही है। परन्तु ऐसे कथन करनेवाले को हम सम्मति देंगे कि वह एक बार आद्योपान्त मनुस्मृति को पढ़ जावे, पुनः मनुस्मृति के बहुमूल्य रत्न जो कूड़े-करकट के साथ-साथ भी दमक रहे हैं, वे आप ही उनके मन को आकर्षित कर लेंगे। अब इन बातों को छोड़ कि इस मनुस्मृति में अमुक-अमुक श्लोक मनु वा भृगु वा स्वायम्भुव मनु की प्राचीन शिक्षानुसार कहे जा सकते हैं तथा अमुक-अमुक श्लोक श्रीमान् महाराज इक्ष्वाकु के समय के पीछे के किसी धार्मिक विद्वान् वा विद्वानों के कहे हुए तथा अमुक-अमुक श्लोक वाममार्ग के प्रचार के कुछ समय पूर्व वा पीछे के किन्हीं साधारण पढ़े-लिखे तथा स्वार्थप्रिय लोगों के हैं, हम 2654 श्लोकवाली पूर्ण वर्तमान मनुस्मृति के कतिपय लाभकारी विषयों को संक्षेपतः अंकित करते हैं।

आर्य और दस्यु—मनुस्मृति अध्याय दश के निम्नलिखित पैतालीसवें

श्लोक से ज्ञात होता है कि संसार की मनुष्य-जाति के मुख्य दो भेद थे। एक भेद के अन्तर्गत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र थे और दूसरे भेद के अन्तर्गत वे सब मनुष्य थे जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वा शूद्रों से उत्पन्न होकर भी (चाहे वे समवर्ण के स्त्री-पुरुषों से उत्पन्न हुए हों वा विषमवर्ण के स्त्री-पुरुषों से उत्पन्न हुए हों) भ्रष्टाचार के कारण दुष्ट वा दस्यु कहलाते थे। यथा—

मुखबाहूरूपज्जानां या लोके जातयो बहिः ।

म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः सृताः ॥ (मनु० 10।45)

अर्थात् “इस संसार में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों से उत्पन्न हुई परन्तु (भ्रष्टाचार के कारण) उनसे बहिष्कृत हुई जो जातियाँ हैं, चाहे वे म्लेच्छ-भाषा बोलती हों या आर्यभाषा बोलती हों, वे सबकी सब दस्यु नाम से पुकारी गयी हैं।¹ इस श्लोक से यह भी प्रकट होता है कि संसार के

1. मालूम होता है कि दस्युओं के भीतर केवल वही दुराचारी लोग सम्मिलित नहीं थे जो अतिमूर्ख होने से ‘आर्यवाचः’ उस समय की आर्यभाषा अर्थात् संस्कृत के शब्दों को विस्पष्ट उच्चारण नहीं कर सकने के कारण म्लेच्छ भाषा बोलते हों, प्रत्युत दस्युओं के भीतर उन दुराचारियों की भी गणना थी जो आर्यभाषा भली-भाँति बोल भी सकते थे। महर्षि पाणिनि अपने धातुपाठ में लिखते हैं, “‘म्लेच्छ अव्यक्ते शब्दे’” अर्थात् म्लेच्छ धातु का प्रयोग ‘अविस्फुट भाषण’ अर्थ में होता है जिससे पता लगता है कि जो लोग अतिमूर्ख रहने के कारण संस्कृत-शब्दों का ठीक-ठीक उच्चारण नहीं कर सके और संस्कृत-शब्दों को बिगाड़-बिगाड़कर बोलने लगे, उन्हीं की भाषा म्लेच्छ (अविस्फुट) कहलाने लगी। क्योंकि आर्यवित तथा उसके आसपास के स्थानों से भिन्न देशों में संस्कृत का प्रचार वैसा नहीं रह सका जैसा कि आर्यवर्त में तथा इसके आस-पास रहा, इस कारण अन्यान्य देशों में म्लेच्छ-भाषा अधिकतर फैल गई और उसके भी अनेक भेद हो गए। क्योंकि जिस स्थल में जिस वस्तु की अधिकता होती है वह स्थान प्रायः उसी नाम से पुकारा जाता है, यथा जिस ग्राम में अधिक वणिक हों और ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र कम हों तो उस ग्राम को प्रायः वणिकों का ग्राम कहते हैं, उसी प्रकार संस्कृतभाषियों के देश आर्यवर्त तथा उसके आस-पास के स्थानों से भिन्न-भिन्न देशों में म्लेच्छ भाषा (मूर्खों की भाषा) बोलनेवालों की अधिकता के कारण उन देशों का नाम भी म्लेच्छ देश पड़ गया और इसी कारण मनुस्मृति अध्याय 2 श्लोक 23 में लिखा है “‘म्लेच्छदेशस्तः परः’” अर्थात् आर्यभाषियों के देश से म्लेच्छ देश परे है। क्योंकि दस्युओं के भीतर आर्यभाषी कम और मलेच्छभाषी अधिक थे, इस कारण संभव है कि कालांतर में दस्युओं का नाम म्लेच्छ भी पड़ गया हो।

मनुष्य-मात्र एक-दूसरे के साथ सम्बन्धित हैं, क्योंकि दस्युओं की उत्पत्ति भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों से ही हुई है; दोनों कोटि के मनुष्यों में भेद केवल सदाचार और दुराचार का ही है।

जबकि उक्त श्लोकानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों से उत्पन्न हुए मनुष्य भी दुराचार के कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नहीं रह सके, तो निश्चय है कि सदाचार के धारण करने पर दस्यु-नामांकित मनुष्य वा उनकी सन्तान भी नीच नहीं बनी रह सकती।

क्या वर्तमान आर्य, मनुस्मृति की उक्त शिक्षा पर ध्यान देंगे और अपने पुरुषाओं से बिछुड़े हुए दस्युओं की सन्तानों के बीच भी सदाचार का प्रचार कर पुनः उन्हें श्रेष्ठ बनाने की चेष्टा करेंगे।

द्विजाति और शूद्र—मनुस्मृति अध्याय दश के निम्नलिखित चतुर्थ श्लोक से ज्ञात होता है कि वर्ण केवल चार ही होते हैं—

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ।

चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः ॥ (मनु० 10/14)

अर्थात् “ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीन वर्ण ‘द्विजाति’ हैं और चौथा शूद्र ‘एक जाति’ है, (इनके अतिरिक्त) पाँचवाँ कोई वर्ण नहीं है।” ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य द्विजाति अर्थात् दो जन्मवाले इस कारण कहलाते हैं कि उन्होंने शरीर-सम्बन्धी एक जन्म तो अपने माता-पिता से धारण किया था और दूसरा ज्ञान-सम्बन्धी जन्म उन्होंने ‘गुरु’ नामक पिता और सावित्री नामक माता से ग्रहण किया; और शूद्र एकजाति अर्थात् एक जन्मवाला इस कारण कहलाता है कि वह शरीर-सम्बन्धी केवल एक जन्म अपने पिता-माता से ग्रहण कर सका और गुरु की शरण में उपस्थित हो ज्ञान-सम्बन्धी दूसरा जन्म धारण न कर सका। परन्तु ऐसा नहीं समझना चाहिए कि जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वा शूद्रकुल में उत्पन्न हो गया, वह सदा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वा शूद्र ही बना रहेगा, क्योंकि मनुस्मृति में लिखा है—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।

क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥ (मनु० 10/165)

अर्थात् “शूद्रकुल में उत्पन्न होकर ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्य के समान गुण-कर्म-स्वभाव वाला हो तो वह शूद्र, ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्य हो जाये,

वैसे ही जो ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्यकुल में उत्पन्न हुआ हो और उसके गुण-कर्म-स्वभाव शूद्र के सदृश हों तो वह शूद्र हो जाये, वैसे ही क्षत्रिय वा वैश्यकुल में उत्पन्न होकर ब्राह्मण व शूद्र के समान होने से ब्राह्मण वा शूद्र भी हो जाता है।”

इस श्लोक से यह भी भाव टपकता है कि शूद्रों की उन्नति में प्राचीन समय में किसी प्रकार की रुकावट नहीं डाली जाती थी। यदि रुकावट डाली जाती तो ब्राह्मण बनने के लिए जो पूर्णज्ञान और तपश्चरण की आवश्यकता है उसे शूद्र कुमार किस प्रकार धारण कर सकता !

इस श्लोक के भाव के विरुद्ध जो श्लोक मनुस्मृति में आते हैं वे प्रक्षिप्त हैं क्योंकि मनुस्मृति का उद्देश्य क्या है, इस विषय को वर्णन करते हुए मनुस्मृति में लिखा है—

सर्वं तु समवेक्ष्येदं निखिलं ज्ञानचक्षुषा ।

श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान् स्वधर्मे निविशेत वै ॥ (मनु० 218)

अर्थात् “विद्वान् को चाहिए कि इस सबको (इस धर्मशास्त्र को) ज्ञान के नेत्रों से तथा वेद के प्रमाणों से जाँचें और अपने धर्म वा कर्तव्य में संलग्न हो जायें।”

और क्योंकि यह परम प्रसिद्ध बात है कि वेद के मन्त्र ‘यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय’ में शूद्रों के लिए भी वैदिक ज्ञान की शिक्षा की आवश्यकता बतलाई है, अतः मनुस्मृति का श्लोक ‘शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् । क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च’ वेदानुकूल होने से प्रामाणिक और इससे विरुद्ध भाववाले श्लोक अप्रामाणिक हैं। चारों वर्णों का धर्म वर्णन करते समय शूद्रों के विषय में पुनः लिखा जायेगा, उसे भी अवलोकन कर लेना चाहिए।